कुबेरनाथ राय के निबंधों में राम

जीवन का लक्ष्य कर्म नहीं। कर्म तो साधन है। लक्ष्य है लीला अर्थात् मौज-रंग बाजी। यही तो वैष्णवता है।
निर्भय बनो, भयानक को गले लगाकर भय की वेदना से मुक्त हो जाओ।
सन्यासी और इतिहासकार को चराचर जितेंद्रिय होना चाहिए। कुबेरनाथ राय

1-उद्देश्य:

- पाठक की मानसिक ऋद्धि और बौद्धिक क्षितिज का विस्तार करना।
- रामकथा के भावात्मक और बौद्धिक सौन्दर्य का उद्घाटन।
- सामाजिक दृष्टि से 'राम' की उपासना और आदर्श ही हमारी डूबती नाव को बचा सकता है।
-राम ही पूर्णावतार थे/हैं।

2-लेखक-परिचय:

(क) श्री कुबेरनाथ भारतीय साहित्य जगत में **निबंधकार** के रूप में प्रख्यात हैं। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले जहां का **'मैं भी हूँ'**, में जन्मे श्री राय का 'जीवन घटना विहीन रहा [है]।' निजी दुःख-सुख की बात करते हुए वे शायद ही दिखते हैं। अपवाद स्वरूप एक-दो निजी पत्रों में यदि वह व्यथा दिखाई भी देती है तो वहाँ उसका स्वर मार्मिक ही है- "... **हम लोगों की तो कोई बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं। इसीलिए कोई मंच मिले या न मिले, कोई फोरम मिले या न मिले मैं ज्यादा परेशान नहीं होता... तब भी मन में कभी-कभी होता है कि उचित परिवेश और अवसर मिलने पर कुछ पराक्रम दिखाने का मौका मिलता।"**

(ख) श्री राय के लेखन की विधा **निबंध** है। उनकी दृष्टि में **'किसी भी जाति की ... बौद्धिक गंभीरता तथा उदात्तता का परिचायक है निबंध-साहित्य।'** अत: **"निबंध ही किसी जाति के ब्रह्मतेज को व्यक्त करता है।"** वे अनुभव-समुद्र से याचना करते हुए कहते हैं कि "**यदि देना ही है तो एक पवित्र शंख फेंक दो....मात्र एक शंख। ...मुझे तो चाहिए *शुचिस्वेत आवाहनमय* एक गद्य शंख .....। दोगे तो दे दो।"** उनके गद्य शंख से अनेक मधु-स्वर निकले हैं। एक तरफ **वाल्मीकि,कालिदास,भवभूति,तुलसी और नटराज** हैं तो दूसरी तरफ **शेक्सपीयर, होमर, वर्जिल** (पर मोनोग्राफ भी) हैं। समाज विज्ञान के लिए **कीर्केगार्द,फ्रायड,सार्त्र, मरक्यूज, कामू,काफ्का** और **आधुनिकता** पर अनुचिंतन भी है। इसके साथ ही **नदी,पशु,पक्षी,पेड़-पौधे** भी हैं। इस प्रकार उनके निबंध **कला,साहित्य,इतिहास, नृतत्वशास्त्र, धर्मशास्त्र, आधुनिकता बोध** आदि पर अध्ययन करने वालों के लिए **Inter-Cross-Multi-Trans disciplinary** का अपूर्व खजाना बन गए हैं। शर्त यह है कि आपको उनके निबंधों के **'महाकांतार में पदयात्रा करनी पड़ेगी और साथ ही अभिव्यक्ति के चंदन-काष्ठ को बैठकर घिसना भी पड़ेगा।'**

3-बीज-वपन:

'मानस-महाभारत' आदि के संस्कार-बीज श्री राय के घर-आँगन में ही पनपे। **'माधुरी'** और **'विशाल भारत'** के संपर्क ने उनके बौद्धिक क्षितिज का विस्तार किया। मजेदार बात यह है कि मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए उन्होंने जो पहला लेख लिखा उसका शीर्षक था- **'साहित्य में मेरा वादा'**। और आगे तो **"निश्चय [ही कर**

लिया] किया...कि एक दिन पूज्य पिताजी जब सोये रहेंगे, तो उनके सिरहाने से...फटी दीमक लगी किताब निकाल लाऊँगा और आग लगाकर फूँक दूंगा। ...तब हिन्दू धर्म के लिए एक नई पोथी लिखनी पड़ेगी...उस नई किताब को मैं लिखूंगा, और जो-जो मन में आयेगा,सो लिखूंगा। आखिर मेरी बात भी तो कभी आनी चाहिए कि आजीवन मैं 'हाँ,कहारी हाँ' का ठेका ही पीछे से भरता रहूँगा।"

4-असली लेखन की शुरुआत:

'आसाम ट्रिब्यून' के 1961 के दुर्गापूजा अंक में **हुमायूँ कबीर** का एक आलेख उन्हें पढ़ने को मिला। वे इस आलेख की अनेक स्थापनाओं से सहमत नहीं थे। उन्होने असहमति-स्वर युक्त आलेख (**कॉक एंड बुल स्टोरी**) '**इतिहास अथवा शुकसारिका कथा**' शीर्षक से 'सरस्वती' पत्रिका को लेख क्या भेजा उन्हें लेखन में ही उतर जाना पड़ा - "सन 1962 में प्रो हुमायूँ कबीर की इतिहास संबंधी ऊलजलूल मान्यताओं पर मेरे एक तर्कपूर्ण और क्रोधपूर्ण निबंध को पढ़कर पं. श्रीनारायन चतुर्वेदी ने **मुझे घसीट कर मैदान में खड़ा कर दिया और हाथ में धनुष-बाण पकड़ा दिया। अब 'मैं अपने *राष्ट्रीय और साहित्यिक उत्तरदायित्व* के प्रति सजग था'।"**

श्री राय का अपने लेखन के बारे में निर्भ्रांत शब्दों में कहा है **-" सच तो यह है कि मेरा सम्पूर्ण साहित्य या तो क्रोध है, नहीं तो अन्तर का हाहाकार।। पर इस क्रोध और इस आर्तनाद को मैंने सारे हिन्दुस्तान के क्रोध और आर्तनाद के रूप में देखा है। इन निबन्धों को लिखते समय मुझे सदैव अनुभव होता रहा 'अहं भारतोऽस्मि'**।"

5-कुनारा की इतिहास-यात्रा

'चरन् वै मधु विन्दति'- चलने वाला ही मधु प्राप्त करता है। वेदों का हुक्म है **'चरैवेति-चरैवेति'।** वेद-पुत्र श्री राय इस हुक्म को सर माथे लगाते हैं और निकल पड़ते हैं 'राम की तलाश' में। उनकी यह यात्रा भौतिक नहीं है जैसा कि हम सब रात-दिन करते रहते हैं। उनकी यात्रा 'मानसिक' होती थी।

इस प्रकार श्री राय पूर्वजों के ऐतिहासिक **'योगदान**' की तलाश में खूब मानसिक यात्रा करते हैं। इस यात्रा में उनके साथ रहते हैं-'**भाषा विज्ञान, नृतत्व शास्त्र,आधुनिक विज्ञान और सबसे बढ़कर 'आधुनिकता का विवेक '।"** उनकी दृष्टि में आधुनिकता फैशन से कहीं अधिक सूक्ष्म और गहरी चीज है। **यह एक दृष्टिक्रम है, एक बोध-प्रक्रिया है, एक संस्कार-प्रवाह है या सीधी शब्दावली में 'एक खास तरह का स्वभाव' है ...।**

श्री राय बताते हैं कि 'पूर्वजों की शताब्दी-दर-शताब्दी चलने वाली इस यात्रा में **अग्नि और पुरोहित, सजे हुए धनु-बाण, नर-नारी, गोधन और रथ तथा अश्व आदि एक लय** में आगे बढ़ते चलते जा रहे हैं। अनेक-2 नदियों-स्थलों को पर करते हुए यह समूह सप्त-सिन्धु को पार कर सरस्वती के तट पर ठहरता है। ठहराव और यात्रा का यह क्रम चलता रहता है। अब तक एक नेतृत्व का उभार होता है। नेतृत्व राजा '**रहूगण**' के हाथ में आता है और यात्रा उनके नेतृत्व में आगे बढ़ता है। वस्तुत: 'राजा '**रहूगण**' के मुख से अग्नि निकली' का अर्थ नेतृत्व की ओर संकेत है। अग्नि अर्थात प्रकाश। आगे अग्नि पीछे पुरोहित और अन्य। इस प्रकार यह समूह कोसल, मगध के पार **सदानीरा गण्डक** तट पर पहुँचता। श्री राय मानते हैं कि **"यह 'रहूगण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं। 'रहू' 'रघु' का ही प्राकृत रूप है। और 'गण' शब्द स्पष्टत: Republic है। अत: रघुओं के गण का यह महाअभियान था। जो कोसल से मिथिला तक पुन: फैल गया।** रघुगणों ने **'संघर्ष-परिचय-सहयोग-समन्वय'** के सहयोग से जिस संस्कृति की नींव डाली वही आज की **हिन्दू-संस्कृति है।** वही

भारतीय संस्कृति का प्रधान चेहरा भी है। इसी वंश का सर्वश्रेष्ठ पुरुष था **'रामचन्द्र'** और इसी पुरुष की जीवन-गाथा हमारा **राष्ट्रीय महाकाव्य है।"**

कहानी फिर आगे बढ़ती है और श्री राय इस बार **मन पवन की नौका** पर सवार हैं। वे बताते हैं कि इसी रघुगण की एक शाखा थी 'शाक्यगण' जिसमें गौतम बुद्ध पैदा हुए और उन्होंने पुनः 'चरैवेति' का आह्वान किया। लेकिन इस बार **'संस्कृति' नहीं 'धर्म'** के नाम पर 'चरैवेति' का नारा दिया गया-**'चरति भिक्षवे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'** के साथ। उन्होंने कहा-'चीवर और भिक्षा-पात्र' लेकर चलो। उनका 'चलना' इतना मशहूर हो गया कि उन्हें लोग **'सुगत' 'तथागत'** कहने लगे। बौद्ध धर्म वस्तुत: कर्मकाण्ड के विरोध में हुई थी। परंतु कालांतर में यह **'कर्म'** का भी विरोध करने लगी। हिन्दुस्तानी मन इसके अनुकूल तो नहीं था। फिर भी इसके पताका के नीचे सारा **जम्बूद्वीप** आ गया। तीन क्षेत्र तब भी अछूते थे-**काशी,मथुरा (वृन्दावन) और अयोध्या।** अंतत: "**'कामना का दमन', जीवन का तिरस्कार, अर्थ और काम के पुरुषार्थों को धिक्कार जैसी** जीवन विरोधी निषेध-प्रधान दृष्टि को हिन्दुस्तानी मन स्वीकार नहीं कर सका।"

युग-यात्रा आगे बढ़ती है और अब आए **शंकराचार्य**। यह सबको ज्ञात है कि 'शंकराचार्य को घनघोर वैष्णव गण **प्रच्छन्न 'बौद्ध'** कहते हैं।' कालांतर में इसकी प्रतिक्रिया हुई और रामानुज ने इसके प्रतिकूल स्थापना कर दी कि 'प्रकृति भी सत्य है'। श्री राय बताते हैं कि 'जड़चेतनमय परमा प्रकृति की वकालत करते समय उन्हें भी '**इच्छाशक्ति के बड़े पक्षधर अवतार'** को प्रोत्साहन देना पड़ा। फलतः कृष्ण का पलड़ा भारी पड़ता गया। भागवत का **दशम स्कन्ध 'मोटा'** होता गया। अन्य अवतारों के प्रसंग पतले होते गये। और निम्बार्क-वल्लभ तक आते-आते **कृष्ण बन गये पूर्णावतार।'**

फिर इतिहास ने पलटा खाया। अब आए **यवन।** मुसलमान बादशाह आये। परिस्थितियाँ बादल चुकी थीं। भारतीय जन को 'इस बार **राजनीतिक कारणों से भी इच्छाशक्ति के देवता** का आसरा लेना पड़ा।' भारतीय मनीषा को सावधानी पूर्वक जनता को नये धर्म-आकर्षण से मुक्त रखने के लिए '**गीत नृत्य श्रृंगार प्रधान धर्म, साज-सज्जा प्रधान धर्म** का आश्रय लेना पड़ा'। मुगल बादशाह के रूप-सौंदर्य के समानान्तर कृष्ण को खड़ा किया। इस प्रकार 'तात्कालिक रोबदाब और आकर्षण को हीन तथा विकर्षित करने के लिए भी **कृष्ण ही उपयुक्त** आश्रय जान पड़े।'

श्री राय मानते हैं कि यह वह दौर था जब 'हिन्दू जाति का धनुष टूट चुका था, तलवार हार चुकी थी, राजनीति में कोई जगह नहीं थी, ब्राह्मणों की अदूरदर्शिता से समुद्र-यात्रा निषिद्ध हो गयी थी। ... शिल्पी ज्यादातर के लोभ से मुसलमान बन चुके थे। स्थिति यह थी कि **मानसिक वृत्तियों के विस्तार के लिए एक संगीतात्मक धर्म-साधना** के सिवा और कोई मार्ग नहीं था। इसके भी उपयुक्त माध्यम थे कृष्ण ही। अतः कृष्ण का जोर बढ़ता गया। साथ ही उनका **पूर्णावतार** होने का दावा भी मजबूत होता गया। **फलतः सोलहवीं शती तक आते-आते-ब्रह्मवैवर्तपुराण तक आते-आते कृष्ण पूर्णावतार हो गये।** यह बात मान्य हो गयी।"

यह एक तथ्य है कि 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाली नीति और शास्त्र की लगाम का ही फल हुआ है कि रामानुजाचार्य के बाद और उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध तक-750 वर्षों की लम्बी अवधि तक विश्व-सभ्यता को कोई अवदान हम नहीं दे सके। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में जब लगाम कुछ ढीली हुई, तो विश्व-सभ्यता में भारत ने अपना विशिष्ट अवदान देना प्रारम्भ किया और अपनी गरिमा को पुनर्स्थापित किया।

6-नई पोथी के वादे की पूर्ति:

श्री राय को तो अपने वादे के अनुसार 'नयी पोथी' लिखना है। नयी पोथी के लिए भाषा भी वैसी ही चाहिए। श्री राय उस भाषा की तलाश में निकल पड़ते हैं और लिखते हैं - ***"मैं गाँव-गाँव, नदी-नदी, वन-वन घूम रहा हूँ । मुझे दरकार है भाषा की। मुझे धातु जैसी ठन-ठन गोपाल टकसाली भाषा नहीं चाहिए। मुझे चाहिए नदी जैसी निर्मल झिरमिर भाषा, मुझे चाहिए हवा जैसी अरूप भाषा। मुझे चाहिए उड़ते डैनों जैसी साहसी भाषा, मुझे चाहिए काक-चक्षु जैसी सजग भाषा, मुझे चाहिए गोली खाकर चट्टान पर गिरे गुर्राते हुए शेर जैसी भाषा, मुझे चाहिए भागते हुए चकित भीत मृग जैसी ताल-प्रमाण झंप लेती हुई भाषा, मुझे चाहिए वृषभ के हुंकार जैसी गर्वोन्नत भाषा, मुझे चाहिए भैंसे की हँकड़ती डकार जैसी भाषा, मुझे चाहिए शरदकालीन ज्योत्सना में जंबुकों के मंत्र पाठ जैसी बिफरती हुई भाषा, मुझे चाहिए सूर के भ्रमरगीत, गोसाईं जी के अयोध्याकाण्ड, और कबीर की 'साखी' जैसी भाषा, मुझे चाहिए गंगा-जमुना-सरस्वती जैसी त्रिगुणात्मक भाषा, मुझे चाहिए कंठलग्न यज्ञोपवीत की प्रतीक हविर्भुजा सावित्री जैसी भाषा।"***

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के प्रथम अर्धांश में जब भारतीय साहित्येतिहास के आकाश पर संस्कृति तथा इतिहास-संशोधन के सरकारी विधाता-व्याख्याता, मनसबदार तथा नव्य-पुरातन वामपंथियों का अश्वमेध यज्ञ चालू था और वे **'सांस्कृतिक-स्वातन्त्र्य'** और **'बुद्धि-स्वातन्त्र्य'** के नाम पर न केवल **'लोलिता'** का चंग बनाकर उड़ा रहे थे अपितु **'रामकथा/मानस'** को ही प्रश्नांकित कर रहे थे, तब उस संक्रमण काल में श्री राय को त्रेताकालीन मृदंग-ध्वनि सुनाई देती है । उनके मन में सवाल कौंधता है- "**मैं ही क्यों इस मृदंग के मधुर-मधुर-गंभीर रव को सुन रहा हूँ और मेरा ही मन क्यों रामाकार हुआ जा रहा है, ... ये आसपास के सारे लोग भी क्यों नहीं इस मृदंग की मधुर-मधुर ध्वनि को सुन पा रहे हैं?"**

श्री राय जब कभी ध्यान-लोक में " **'जगती के शिखर' पर जा खड़े होते हैं ....** तब उन्हें महसूस होता है कि **हाथ उठाकर कोई दिव्य चतुर्मुख पुरुष आशीर्वाद देते हुए कह रहा है कि "वत्स, ऋषि, रामचंद्र के रसरूप के जनक तुम्हीं बन सकते हो ।"** उस परमादेश को स्वीकार करते हुए श्री राय **'इतिहास के रामचंद्र को सही रसरूप प्रदान करने'** के लिए **रामकथा-लेखन** में उतरते हैं और लिखते हैं-**"नेताओं में गांधीजी, किताबों में रामचरितमानस, वनस्पतियों में हरी-हरी दूब, पशुओं में गाय, रसों में करुण रस, ये सब मुझे एक ही किस्म के भाव-संकुल या बोध प्रदान करते हैं। इन सबमें शांति है, निष्कपटता है, विनय है और सेवा धर्म है, साथ-ही-साथ महिमा और त्याग भी है।"**

'नई पोथी' लिखने के वादे की शुरुआत में ही वे इतिहास की तरफ मुड़ जाते हैं और लिखते हैं- **"बख्तियार खिलजी जब गौड़ देश पर चढ़ आया तो राजा लक्ष्मण सेन को गीतगोविन्दकार जयदेव ने यही उपदेश दिया- "महाराज, भगवान् की इच्छा! आप यवन को पराजित नहीं कर पायेंगे, अतः लोहा लेना व्यर्थ है। परम शान्ति के आश्रय भगवान् की शरण में जाइये!" पता नहीं यह किंवदन्ती कितनी सत्य है। पर जयदेव की जगह तुलसीदास होते तो कहते "महाराज, रामचन्द्र का स्मरण करके मैदान में उतरिये ! आपका समर रामचन्द्र स्वयं करेंगे।"** श्रद्धा और विश्वास के इसी सूत्र का गांठ बांधकर वे अपने लेखकीय द्विजत्व द्वारा पकड़ाये गए धनुष-बाण को लेकर विश्व साहित्य के क्लासिकल काव्यों/महाकाव्यों के महाकांतार में

प्रवेश करते हैं । इस कार्तिकेय-यात्रा में भी क्या मजाल कि किसी **'अप्सरा-नायिका'** की बाँकी चितवन उन्हें घायल कर सके। अगर किसी मोड़ पर कोई **'तीरे-नजर'** या **'मार कन्याएं'** दिखी भी तो उसे **गुडाकेश** भाव में **'माते प्रणाम'**{'वात्सल्य' (Mother instinct) जो फ्रायडियन instinct से भिन्न है} कहकर तीर-वेग से लक्ष्य की ओर मुड़ जाते थे। आखिर **'रन में, वन में सदैव साथ-साथ अभय की गदा लेकर चलने वाले'** बजरंगबली जो उनके साथ थे।

7-पढ़ते समय सावधानी की जरूरत

श्री राय के **'निबंध-कांतार'** से गुजरते समय विषय और वर्ष/समय के साथ-साथ उस काल खंड की घटनाओं तथा आगे-पीछे के वैचारिक आंदोलनों और उसकी पृष्ठभूमि से परिचय होना जरूरी है। अन्यथा चिंतन के **'शांत-बिन्दु'** पर बैठे श्री राय द्वारा उद्घाटित **'परमा-स्मृति'** की निर्मिति के ताने-बाने की बुनावट को समझना कठिन होगा। रामकथा पर कुबेरनाथ राय द्वारा लिखा गया पहला निबंध **23 अक्तूबर 1966 के धर्मयुग** में प्रकाशित हुआ था,जिसका शीर्षक था **'राम... निर्वासन और निर्माण : एक चिर पुरातन आधुनिक समस्या'**। इस निबंध में श्री राय राम के निर्वासन को वैश्विक समस्या के रूप में देखते हुए उसकी जड़ तक जाते हैं और बताते हैं "**नया मनुष्य अकारण निर्वासित है, ऐतिहासिक शक्तियों (नाजीवाद, कम्यूनिज्म, महायुद्ध और विभाजन) द्वारा । इस पीढ़ी का कोई अपराध नहीं। ऐसे अकारण निर्वासन का उदाहरण 'रामायण' में भी है। राम उसी तरह अकारण निर्वासित हुए थे, जैसे आज का नया मनुष्य ।**" लेकिन दोनों में भेद है। नया मनुष्य जहाँ 'स्व' के कोटर में अपने को बंद कर अजनबीपन का शिकार होने दिया है वहीं राम 'स्व' के प्रति तटस्थ होकर **" बे-पहचान से भी पहचान करते हैं, प्रीति करते हैं और ऐसी प्रीति कि 'कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा।'** निशिचर कामरूप होता है। **स्वभाव से मायावी होता है। पर तो भी कोई हर्ज नहीं। वह भी अपना है। और यदि "भेद लेन पठवा दशशीशा । तबहुँ कछु नहिं हानि कपीशा।**" वे 'नया मनुष्य' का आह्वान करते हैं राम-पथ पर चलने के लिए। लेकिन यह आसान नहीं है। राम को देवता मानकर 'नया मनुष्य' 'उंह' उच्चारण कर मुंह फेरने की कला में माहिर है। इसलिए उन्होंने अपने निबंधों में राम को एक मनुष्य के रूप प्रस्तुत करने और उसके विकसित होने की प्रक्रिया को दर्शाया है। इस प्रक्रिया/रहस्य की कथा को सरस,सरल,सहज और तथ्य आधारित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए वे रामकथा के उत्स **'महाकाव्य का जन्म'** से विषय को उठाते हैं और **'युग संदर्भ में मानस'** की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए इतिहासकारों के लिए नव्य-पथ - '**भारतीय इतिहास-दृष्टि और रामकथा'**- का निर्माण-पाठ तैयार करते हुए बोध के कैलाश शिखर **-'राम ही पूर्णावतार थे'**- पर पहुँचकर विश्राम करते हैं। श्री राय की यह यात्रा गांधी-पथ है -'**मैं मार्ग जनता हूँ । वह सीधा और संकरा है। वह तलवार की धार की तरह है। मुझे उस पर चलने में आनंद आता है।'**

1974 में जब भारतवर्ष द्वारा **'मानस चतु:शती महोत्सव'** के प्रचार-प्रसार की तैयारी चल रही थी तो उस निमित्त लेख लिखवाने के लिए सरस्वती के संपादक श्री नारायण चतुर्वेदी श्री राय को याद किया। वे लिखते हैं -" **...** मैं बड़ी चिन्ता में पड़ गया, क्योंकि **सारी समस्या एक वृहत्तर सांस्कृतिक-नैतिक और आध्यात्मिक समस्या** के अन्दर अन्तर्भुक्त-सी लगती है **और मानस-समारोह को उस** वृहत्तर समस्या-वृत्त **के मध्य रखकर ही देखना होगा अन्यथा विगत** टैगोर शतवार्षिकी और गालिब शताब्दी समारोह की तरह **यह भी बिल-तमाशा लूट-खसोट बनकर रह जायगा।"** इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि पाँच दशक बाद भी आज पूर्वजों की जयंती-समारोह हाथी-दाँत ही हैं। चतुर्वेदी जी के आग्रह को शिरोधार्य करते हुए उन्होंने 'सरस्वती' के लिए एक बड़ा आलेख **'मानस-दृढ़ता और संघर्षशील चरित्र का सूत्र'** (1972) शीर्षक से लिखकर भेज दिया। यह आलेख इस बात का प्रमाण है कि धारा के विपरीत जाकर **'नयी पोथी'** लिखने का जो उनका वादा था, उससे वे

विरत नहीं हुए थे। इस आलेख में उन्होंने अनेक सुझाव भी दिये थे । इन सुझावों से सहमत/असहमत हुआ जा सकता है । पर इससे श्री राय के साहस और उनकी मुख्य प्रतिज्ञा **'नयी पोथी'** लिखने का पता तो चल ही जाता है।

श्री राय मानस को **संस्कार-महीरुह** के रूप में देखते हैं और उसके मंगलाचरण को बेजोड़ मानते हैं। मंगलाचरण के श्लोकों की विवेचना करते हुए उसमें **ज्ञान-कर्म-इच्छा** तत्वों की खोज की है। मंगलाचरण के श्लोक एक तरफ तो स्थूल अथवा **सामाजिक अर्थ में शैव-वैष्णव के समन्वय** की ओर संकेत करते हैं तो दूसरी तरफ सूक्ष्म स्तर पर इसमें **सन्निहित तुलसी के पौरुष प्रधान रूप और तत्कालीन पराजित जाति की इच्छाशक्ति को कर्मोन्मुख** करने के रूप में देखा है। महाकाव्य का उद्देश्य ही होता है –**'शील,करुणा और सौंदर्य का उद्घाटन'** जो **'पराक्रम'** से भी शक्तिशाली तत्व हैं। इतिहास भी इस बात का गवाह है कि अपनी तमाम कुटिल शक्तियों के बावजूद 'गजनी-गोरी-खिलजी-मुगल' की इस्लामिक शक्तियां पराजित हुई और जीत हुई इसी त्रिविक्रम पराक्रम **'शील,करुणा और सौंदर्य'** के रचनाकार भक्त कवियों की। जिसके अप्रतिम उदाहरण के रूप में हमारे सामने आते हैं **'तुलसी और गांधी'**।

वैष्णव गुरुओं से क्षमायाचना के साथ वे अपनी नयी पोथी सामने रख ही देते हैं-*जो हुआ सो हुआ* । परन्तु **"मैं तो आज के युग का जीव हूँ। मैं शती के घोर भौतिकवादी युग का पुरुष हूँ, आज मैं देख रहा हूँ कि समाज में इच्छाशक्ति का उन्मत्त नर्तन हो रहा है और आज की सामाजिक स्थिति, समाज की तृषाएँ और आकांक्षाएँ बदल चुकी हैं। एक ओर हम वैज्ञानिक कर्मयोग के अरण्य में फँस गये हैं, दूसरी ओर उद्दाम भोग की संस्कृति हमारा ग्रास करने जा रही है। 'यूनान मिस्र रोमाँ मिट गये जहाँ से। बाकी है अब भी नामोनिशाँ हमारा।'** ठीक बात है, परन्तु इस बाकी रह जाने का, बच जाने का, इस दीर्घ जीवन का रहस्य क्या है ?

वे स्वयं उत्तर देते हुए बताते हैं-"वह है हमारी समाज व्यवस्था में 'काम' पर लगाम और उसकी पवित्रता पर जोर। दुनिया की किसी जाति ने नारी के सतीत्व पर इतना जोर नहीं दिया है जितना हमारे पूर्वजों ने दिया है। दुनिया की और किसी जाति ने ब्रह्म मार्ग को इतना बड़ा आदर्श नहीं बताया है जितना हमारे ग्रन्थों ने बताया है। दुनिया की किसी जाति ने दाम्पत्य-जीवन को लेकर महाकाव्य नहीं रचा जबकि हमारा Natural Epic, राष्ट्रीय महाकाव्य ही पवित्र दाम्पत्य जीवन का महाकाव्य है।"

हम चाहे Democracy में विश्वास करें या Totalitarian पद्धति में, चाहे Socialist State में जिएँ या Communism में, हर हालत में हमें ईमानदार नागरिक चाहिए, ईमानदार सेवक चाहिए, अच्छा भाई चाहिए, सदाचारी पति चाहिए, सती पत्नी चाहिए, आदर्श भाई-पिता-माता-पुरजन-परिजन चाहिए। राजनीतिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था बदलने से ये आवश्यकताएँ बदल नहीं जातीं। अतः ये सब चाहिए ही। **इस दृष्टि से भी हम सोचें तो लगता है हमारी नाव डूबने से बच सकती है यदि 'रामचन्द्र' हमारे आदर्श हों, यदि राम का आदर्श ही हमारा आदर्श हो।** और यह बात मुझे प्रेरित करती है यह कहने के लिए कि सामाजिक और ऐतिहासिक अवस्था बदल चुकी है, **अतः आज हमें श्रीकृष्ण को नहीं...राम को ही पूर्णावतार मानना चाहिए। रामचन्द्र ही पूर्णावतार हैं ।**

सारे अवतारों में रामावतार की यह विशेषता है कि **यह पूर्णतः 'मानवीय' है।** मत्स्य, कच्छप,नृसिंह आदि 'अमानवीय' हैं तो कृष्णावतार- 'अतिमानवीय', 'Superhuman । परन्तु **पूर्णतया human रामचन्द्र ही** हैं।

अवतार में मूल बात है ईश्वर का मानुषीकरण। ईश्वर द्वारा 'मानुषी चर्चा' का धारण। **ईश्वर द्वारा मनुष्य की सीमाओं का और यह मानुषी सीमाओं का वरण चरमरूप में रामचन्द्र ही हैं**। आदि से अन्त तक अपनी मानुषी चर्या का क्षणभर के लिए भी परित्याग नहीं करते, कहीं भी अलौकिक शक्ति, अद्भुत अतिमानवीय ईश्वरीय शक्ति के प्रदर्शन द्वारा Police Action की तरह, सुदर्शन चक्र मंगाकर काम नहीं करते, सब कुछ को सहज मानुषी ढंग से विकसित होने देते हैं और इस कठोर मानुषी जीवन की सीमाओं के भीतर, ईश्वर की दिव्यता का चरम रूप उद्घाटित कर जाते हैं अतः 'अवतारत्व' उनमें पूर्णतः शतप्रतिशत प्रतिष्ठित हो जाता है। अन्य किसी अवतार में यह दृष्टिगत नहीं।

अन्य सारे अवतारों का 'अवतारत्व'-यानी ईश्वर का मानुषीकरण-अधूरा रह जाता है। **मनुष्यत्व को छोड़कर अलौकिक ईश्वरत्व** की मदद लेनी ही पड़ती है। अतः ईश्वरावतरण के 'अवतारत्व' के अर्थ में राम एकमात्र पूर्णावतार ठहरते हैं अन्य नहीं।

इस मानवीयता के कारण राम को मानुष अस्तित्व के तीनों सोपानों पर (यानी Aesthetic, ethical and spiritual level पर) अपनी ईश्वरीय विभूति को स्थापित करना पड़ता है। अस्तित्ववादी दार्शनिक कीर्केगार्द ने सत्ता के विकास का तीन स्वर हैं। **रसात्मक (aesthetic), नैतिक (ethical) और आध्यात्मिक (spiritual) !** रस, शील और अध्यात्म ये ही सत्ता के क्रमिक विकास-सोपान हैं। इन तीनों सोपानों पर हम पाते हैं रामचन्द्र के जीवन में पूर्णता की चरम स्थिति। पूर्णता की उस सीमा में जो सीमाबद्ध मनुष्य जीवन में सम्भव हो सकती है या कल्पित हो सकती है। **रामचन्द्र से अधिक सुन्दर, अधिक शीलवान और अधिक आध्यात्मिक होना काल के मनुष्य के लिए सम्भव नहीं।** मनुष्यता जिस सीमा तक जा सकती है, उसका चरम बिन्दु राम में प्रतिष्ठित है। **वाल्मीकि के प्रथम सर्ग में ही उनका यह portrait प्रस्तावित होता है और सही रामायण उस portrait को उत्पन्न करने की साहित्यिक चेष्टा है।** अवतार का ग्रन्थावतार ! परन्तु यहाँ पर हम स्मरण दिलाना चाहते हैं कि रामचन्द्र की पूरी आकृति 'वाल्मीकि' द्वारा रेखांकित नहीं हो पाती और जो छूट जाता है वह है **आध्यात्मिक पक्ष**। इसे स्पष्ट करने के लिए **अध्यात्म रामायण है।** अतः जब हम कहते हैं कि **रामचन्द्र पूर्णावतार हैं तो हमारा तात्पर्य वाल्मीकि के राम और 'अध्यात्म रामायण' के राम के संयुक्त रूप से है।** वाल्मीकि की रामायण रसात्मक और शीलाचारिकी पक्ष को उद्घाटित करती है तो अध्यात्म रामायण उसके **आध्यात्मिक या दार्शनिक पक्ष** को।

श्री राय बताते हैं कि 'यह मेरी बात नहीं। यह गोसाई जी की बात है। **'रामत्व' के गूढ़तम मर्म को गोसाई जी से ज्यादा समझने वाला आज तक पैदा नहीं हुआ।** और उन्होंने यह निर्णय लिया था कि राम की जो आकृति वे प्रस्तुत करेंगे वह वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण की समन्वित छवि होगी और यही छवि 'पूर्णावतार' है। वे भी इसी छवि को पूर्णावतार मानते रहे। **रामाख्यमीशं हरिम्।'** (जिनके कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान हरि की मैं वंदना करता हूं।')

यह एक तथ्य है कि जिस लेखक का **आधुनिक बोध** जितना गहरा और व्यापक होगा वह युग की जटिलता को उतनी ही गहराई और व्याप्ति में पकड़ने सफल होता है। आधुनिकता बोध से अनुप्राणित लेखक परंपरा के स्वीकार-अस्वीकार के बीच संतुलन साधते हुए वर्तमान के प्रति भी सजग रहता है। हालांकि इसके लिए विशद अध्ययन और गंभीर मानसिक संघटन की अपेक्षा होती है। यह एक विरल संयोग है कि श्री राय की मानसिक बुनावट ऐसी ही थी। '**कठिन भूमि, कोमल पग**' निबंध में वे 'राम वन गमन' को एक कर्तव्य-पुरुष के रूप में चित्रित किया है। जैसे-जैसे वह यात्रा आगे बढ़ती है मनुष्य-प्रकृति को एकमेक करते हुए '**भूगोल, राज्य**

और राज्य व्यवस्था, संस्कृति, मनुष्य की निर्मिति और उपमर्द की भूमिका, वन्य-जीव स्वभाव,बचपन की विविध स्मृतियाँ,विधि-विधान,गाँव-देहात,बाढ़ और नौकायन, परिवार और प्रेम,भय और काम-संवेग तथा निषादराज की गांजे की चिलम' सहित न जाने कितनी छवियाँ चित्त में इस तरह से निर्मित होती जाती हैं जैसे पाठक को घर-आँगन में बैठे हुए सब कुछ चलचित्र की तरह दिखाई दे रहा हो । **परंपरा और आधुनिकता** से संपृक्त रामकथा का ऐसा सरस और सजीव चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। लेकिन वे राम के चरित्र को अलौकिक रूप में प्रस्तुत करने के आग्रही नहीं रहे हैं-**"आखिर राम भी तो मृत्तिका पुतुल ही हैं । वे इतिहास की मांटी में जन्म लेते हैं।"** अब यदि **"उन्होंने इतिहास की मृत्तिका में जन्म धारण किया है तो मृत्तिका का मटमैला रजोगुण उनमें होगा ही... गंधवती मृत्तिका के सारे गुण-अवगुण उनमें होंगे ही, क्रोध-रोष-काम तृषा और कूट बुद्धि सभी कमोबेश असली राम में, इतिहास में जीने वाले राम में होंगे ही। जरा-सा ही सही। चंद्रमा में जितना कलंक है, उतना सा ही सही । अथवा, उससे भी कम। परंतु कलंक शून्य 'विरजं विशुद्धं' वे हो नहीं सकते।"**

श्री राय की दृष्टि में राम के मानुषी जीवन में घटी दो-एक घटनाएँ - **बालि-वध,सीता-निर्वासन,शंबूक-वध** आदि को इसके प्रमाण के रूप में रखते हैं । इतिहास से अनेक उदाहरण देते हुए श्री राय बताते हैं कि **'प्रत्येक पैगंबर के सामने जब वरण का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उन्होंने अपने आत्मसत्य को ही वरण किया'।** कहीं '**राम अपनी आत्मा द्वारा स्वीकृत सत्य को ग्रहण करके अडिग रहे और उन्होंने 'साहस' दिखाया**' तो कहीं '**वे लोकमत के दबाव के सम्मुख झुक गये और आत्मोपलब्ध सत्य को स्वीकार करने का साहस उनमें नहीं रहा**'। लेकिन "**इस साहसहीनता के साथ कायरता नहीं, तितिक्षा जुड़ी है, त्याग का आदर्श जुड़ा है। इसी से यह भी महान् है। भले ही यह साहसहीनता हो, परंतु इसके बिना राम का रामत्व अधूरा रह जाता। प्रथम प्रसंग में राम व्यक्ति मात्र थे। व्यक्ति साहस दिखा सकता है। व्यक्ति एक 'अस्तित्त्व', एक सजीव सत्ता है। परंतु दूसरी बार वे राजा हैं। और राजा व्यक्ति नहीं एक 'संस्था', एक अवधारणा होता है जो भावहीन तथा ऋत-बद्ध 'अस्तित्त्व' है, जो सर्वतंत्र-स्वतंत्र नहीं, जो विविध प्रकार के दबावों का दास है और स्वयं भी एक दबाव या दमन की शक्ति है। अतः उत्तरचरित में राम का कार्य व्यक्ति के हिसाब से साहसहीनता है, परंतु राजा के हिसाब से महिमा है। और यह महिमा राम नामक व्यक्ति से साहस नहीं, तितिक्षा की अपेक्षा करती है। यह उनकी मानुषी या देवोपम सहन क्षमता और त्याग का परिचायक है।"**

दुर्भाग्य से आज **आत्म-क्षय और रमण-तृषा की दबाव-तकनीक से 21वीं शती के वाम-दक्षिण के मायावी शैवाल में भारतीयता का प्रतीक 'रामत्व' का मुख कमल उलझ गया है। आक्रमण की रीति,नीति और हथियार बदल गये हैं और नये योद्धा, नये सेनापति मैदान में उतर आये हैं।** ऐसे में श्री राय के इस सनातन कथन को कि '**ईश्वर अस्त हो गया, तो हो जाने दो, पर ग्रंथ तो जीवित है**, जो बताता है कि "वाङ्मनसा अगोचर ईश्वर" हो या न हो, परंतु मानवी आकृति का, मानव रूप धरकर कोई जनमा था और वे सारे मूल्य "सत्यं शौचं दया..." आदि उसके जीवन में युक्तियुक्त हुए थे और उसके आगमन से धरती स्वर्ग बन गई थी, तो फिर उन मूल्यों को हम असत्य क्यों और कैसे मानें ? **कथन' से 'जीवन', कहने की अपेक्षा कर दिखाना, अधिक विश्वसनीय होता है। कथन प्रोपेगैण्डा हो सकता है, पर जिया हुआ जीवन एक fact है, उसकी साक्षी अधिक प्रामाणिक है।**

कुबेरनाथ राय के निबंधों से तैयार **राम-रसायन** वस्तुत: एक प्रकार का आश्रय है, जो हमें बताते हैं कि विगत कई दशकों से हमारी अदूर-दर्शिता के चलते भारतीय जीवन में जो छन्दहीनता आ गयी है, उसके छन्द-पतन को रोकना आवश्यक है और यह तभी संभव है जब हम आज तक '**जो करते रहे उसके ठीक प्रतिकूल नहीं, तो उससे भिन्न दिशा में चलें। न वाम, न दक्षिण, बल्कि सम्मुख तीसरी आंख की सीध में चलें। न वामपंथ, न दक्षिण पंथ, बल्कि उत्तर पंथ की ओर चलें। अब हमें स्वर बदलना है। अन्यथा त्राण नहीं।**'

''अग्नि तुम जागते रहना, अब मैं जरा विश्राम कर रहा हूँ।''